PAPER-I SECTION-B

6. वाद-योग्य-राज्य यदि किसी व्यक्ति को मूल अधिकारों से वंचित करता है तो वह न्यायालय का संरक्षण प्राप्त कर सकता है तथा न्यायालय द्वारा इन्हें लागू करा सकता है। न्यायालय इस बात का निर्धारण करता है कि मूल अधिकारों पर लगायी गई मर्यादायें या प्रतिबन्ध उचित हैं या नहीं। यदि प्रतिबंध उचित नहीं या सांविधानिक धाराओं की अवहेलना करती है या ये अधिकार [illegible] का अतिक्रमण है तो न्यायालय प्रतिबंधों को अवैध घोषित कर रद्द कर सकता है। परन्तु न्यायालय की यह शक्ति विकास के क्रम में स्थायी बाधा नहीं डाल सकती क्योंकि न्यायालय के निर्णय को प्रभावहीन बनाने के लिए संविधान में संशोधन किया जा सकता है।

7. अस्पष्ट और अतिव्यापी-मूल अधिकार विस्तृत होते हुए भी अस्पष्ट हैं। इनमें अतिव्यापकता पाई जाती है जो [illegible] अधिकारों और संसद तथा न्यायालय में संघर्ष को जन्म देती हैं। उदाहरणतः [illegible] उद्देश्यों, मानव शरीर के व्यापार, बेगार, कठोर व्यवसाय, अल्पसंख्यक आदि शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया। कुछ मूल अधिकारों को बार-बार लिखा गया है और कुछ को भिन्न-भिन्न अध्यायों में लिखा गया है। ये तत्त्व भ्रान्तियों को उत्पन्न करते हैं। उदाहरणतः [illegible] की स्वतन्त्रता पूँजी के केन्द्रीकरण को रोकने की व्यवस्था से मेल नहीं खाती है।

8. सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर-सिद्धान्त रूप में नागरिकों के मूल अधिकार अत्यधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होते हैं, परन्तु व्यवहार में उन पर लगाई गई मर्यादाओं या प्रतिबंधों ने उन्हें अवास्तविक बना दिया है। उदाहरणतः समानता के अधिकार में संरक्षित भेद-भाव की व्यवस्था है, स्वतन्त्रता के अधिकार में पी.डी.ए., भारत सुरक्षा अधिनियम और राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम विद्यमान हैं, निर्धनता शिक्षा के अधिकार को अवास्तविक बना देती है, आदि।

9. मूल अधिकार विरोधी कानूनों को रद्द किया जाना-स्वतन्त्रता के पूर्व विद्यमान उन सब कानूनों को रद्द या निरस्त कर दिया गया जो मूल अधिकार विरोधी थे। वर्तमान में, भारतीय संविधान में जिन मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है, वे विश्व के अन्य देशों के संविधानों में वर्णित मूल अधिकारों से व्यापकता लिये हुए हैं।

10. मूल अधिकारों के अलावा प्राकृतिक अधिकारों का अस्तित्व नहीं-भारतीय संविधान केवल मूल अधिकारों को ही मान्यता देता है, प्राकृतिक अधिकारों को नहीं। दूसरे शब्दों में, संविधान केवल मूल अधिकारों को ही मान्यता देता है, प्राकृतिक अधिकारों को नहीं।

11. राज्य की निरंकुशता पर नियन्त्रण-भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाते हैं तथा राज्य की निरंकुशता या स्वेच्छाचारिता पर प्रभावशाली नियन्त्रण लगाते हैं। राज्य इनके विरुद्ध किसी तरह का कानून नहीं बना सकता है और न इन अधिकारों का अतिक्रमण कर सकता है।

12. मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख-मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था कर दी गई है। मूल संविधान में मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं थी। 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में 10 मूल कर्त्तव्यों को शामिल किया गया।

भारतीय संविधान में मूल अधिकार
(Fundamental Rights in Indian Constitution)

संविधान के भाग तीन में भारतीय नागरिकों को प्रदान किए गए मूल अधिकारों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. समता का अधिकार (Right to Equality)-भारतीय संविधान के पाँच अनुच्छेद (अनुच्छेद 14 से 18 तक) नागरिकों के समता के अधिकार का उल्लेख करते हैं। इन अनुच्छेदों में संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित समता के आदर्श को लिपिबद्ध किया गया है। इनमें समान न्याय और स्तर एवं अवसर की समता को सुनिश्चित किया गया है तथा मनमाने अथवा कृत्रिम (भ्रामक) वर्गीकरण के विरुद्ध गारन्टी दी गयी है।

अनुच्छेद 14 भारत क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों को "कानून के समक्ष समानता" और "कानून के समान संरक्षण" का अधिकार प्रदान करता है। यह अधिकार भारतीय नागरिकों और भारत में रहने वाले विदेशियों सहित सभी व्यक्तियों को उपलब्ध है और राज्य उन्हें इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकता। परन्तु "कानून के समक्ष समानता" या "कानून के समान संरक्षण" का यह अर्थ नहीं कि राज्य का "प्रत्येक कानून" सार्वलौकिक होना चाहिए या राज्य "उचित वर्गीकरण" नहीं कर सकता। राज्य विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशेष कानूनों का निर्माण कर सकता है। राज्य "उचित वर्गीकरण" कर सकता है परन्तु वह वर्गीय विधान या साम्प्रदायिक कानून का निर्माण नहीं कर सकता। कानून के समक्ष समानता और "कानून के समान संरक्षण" का अर्थ केवल इतना है कि राज्य कानून द्वारा समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों में भिन्नता नहीं कर सकता। यदि राज्य ऐसा करता है तो उस कानून को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

अनुच्छेद 14 राज्य को केवल नागरिकों में भिन्नता करने से मनाही करता है परन्तु यह अनुच्छेद नागरिकों के परस्पर व्यवहार में भिन्नता करने से मनाही नहीं करता। उदाहरणतः यदि कोई उद्योगपति अपने उद्योग में अपने कर्मचारियों के वेतनों या अन्य व्यवहारों में अनुचित भिन्नता करता है तो उसके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।

अनुच्छेद 15 ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करता है तथा राज्य को धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों में भिन्नता करने से मनाही करता है। संविधान का यह अनुच्छेद राज्य पर यह सकारात्मक उत्तरदायित्व डालता है कि वह ऐसी व्यवस्थाएँ उत्पन्न करेगा जिससे सभी सार्वजनिक स्थान सभी नागरिकों के प्रयोग के लिए खुले रहें। यह अनुच्छेद जैसाकि एम. वी. पायली ने लिखा है, "प्रान्तीयता की जड़ों पर प्रहार करता है, इकहरी नागरिकता को प्रोत्साहन देता है तथा सामाजिक समानता को सबल बनाता है।"

1. 44वें संशोधन ने अनुच्छेद 19 को संशोधित करके और अनुच्छेद 31 को निरस्त करके सम्पत्ति के अधिकार को नागरिकों के मूल अधिकारों के अध्याय से निकाल दिया है।

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक सेवाओं में नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। सार्वजनिक नौकरियों में धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म-स्थान या निवास के आधार पर

3

अनुच्छेद 19 (1) में निम्नलिखित ...

(a) भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।

(b) शान्तिपूर्ण एवं बिना हथियारों के इकट्ठा होने की ...

(c) समुदाय एवं संघ बनाने की स्वतंत्रता।

(d) समस्त भारत में स्वतन्त्रतापूर्वक संचरण ...

(e) भारत के किसी भाग में निवास या बस जाने की ...

(f) सम्पत्ति अर्जन, धारण और व्ययन करने की ...

विधेयक ने इस धारा को निरस्त कर दिया है।)

(g) किसी व्यवसाय, कारोबार या व्यापार की ...

[illegible] कुछ व्यवसायों के लिए जैसे चिकित्सकों, वकीलों, अध्यापकों [illegible] निर्धारित कर सकता है। कुछ व्यवसायों या उद्योगों का [illegible] अपना एकाधिकार स्थापित कर सकता है या उन्हें राज्य द्वारा [illegible] को सौंप सकता है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक और आर्थिक [illegible] अर्थात् भाग चार में वर्णित नीति निर्देशक तत्वों को [illegible] स्वतंत्रताओं को मर्यादित किया जा सकता है।

[illegible] स्वतंत्रताओं पर मर्यादाओं के व्यापक क्षेत्र की व्यवस्था करता [illegible] नहीं हो सकती है। मर्यादायें कानून की प्रक्रिया [illegible] जिनकी कानून आज्ञा [illegible] होनी चाहिए अर्थात् मर्यादायें उस सीमा तक लगायी जा [illegible] इनकी माँग करता हो। मर्यादायें स्वेच्छाचारी से नहीं [illegible] युक्तियुक्त होनी चाहिए। न्यायालय इस बात का निर्धारण करता [illegible] बनाम मध्य प्रदेश राज्य के विवाद में [illegible] था कि "व्यवस्थापिका द्वारा युक्तियुक्त मर्यादाओं का [illegible] न्यायालय के पर्यवेक्षण के अधीन है—व्यवस्थापिका [illegible] स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण करता है तो न्यायालय को उसे [illegible] है।"

[illegible] निश्चित स्वतंत्रता प्रदान करता है तथा राज्य को कार्यांतर [illegible]। यह अनुच्छेद इस बात की गारन्टी देता है कि व्यक्ति को [illegible] यदि वह अपराध करते समय किसी विद्यमान कानून का उल्लंघन [illegible] किसी विद्यमान कानून की अवमानना नहीं होती तो उसे [illegible] दूसरे, दण्ड की मात्रा कानून में वर्णित दण्ड से अधिक नहीं हो [illegible] अभियुक्त को एक बार ही दण्ड दिया जा सकता है। चौथे, [illegible] गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता अर्थात् कथित [illegible] सिद्ध करे कि वह अपराधी नहीं है। यह अभियोक्ता [illegible] कि कथित अभियुक्त ने क्या अपराध किया है।

[illegible] संविधान में सबसे संक्षिप्त अनुच्छेद है, परन्तु यह नागरिकों को [illegible] स्वतन्त्रता प्रदान करता है। संविधान ने इसे भी निषेध रूप से [illegible] कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया से मर्यादित किया है अर्थात् कानून द्वारा [illegible] दैहिक स्वतन्त्रताओं से वंचित किया जा सकता है। सबसे भयानक [illegible] (अच्छाई या बुराई) को निर्धारित नहीं कर [illegible] यदि उसे संवैधानिक धाराओं के [illegible] कानून निर्माण सभा ने अपनी अधिकार शक्ति का अतिक्रमण नहीं [illegible] सीमित नहीं कर सकता है।

अनुच्छेद 22 नागरिकों को मनमानी (निरंकुश) गिरफ्तारी और हवालात से सुरक्षा प्रदान करता है। यह अनुच्छेद इस बात की व्यवस्था करता है कि यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाय तो उसे—

(a) गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र सूचित किया जाये। [illegible] अवलोकित करता है कि गिरफ्तारी के 5 दिन के अन्दर-अन्दर [illegible] गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करा देना चाहिए। गिरफ्तारी के कारण [illegible] व्यक्ति की समझ में आने वाली भाषा में होने चाहिए। [illegible] अनुकूल होने चाहिए।

(b) गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार अधिवक्ता से परामर्श लेने का अधिकार है। उसे यथाशीघ्र सफाई या प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

(c) गिरफ्तार करने के 24 घण्टे के भीतर उसे दण्डाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए और दण्डाधिकारी के आदेश पर ही उसे हिरासत में रखा जा सकता है।

उपर्युक्त सुविधायें उन व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होतीं जो या तो विदेशी शत्रु-देश से सम्बन्ध रखते हों या जिन्हें निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया हो।

निवारक निरोध—संविधान अनुच्छेद 22 (4) में निवारक निरोध की व्यवस्था करता है परन्तु उसे परिभाषित नहीं करता। निवारक निरोध को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है कि जब अधिकार शक्ति के पास किसी अमुक व्यक्ति को हिरासत में रखने के लिए कोई गवाही न हो और न ही उस पर कानूनी आरोप लगाने के लिए कोई कानूनी प्रमाण हो, परन्तु फिर भी उसके पास हिरासत में रखने के लिए पर्याप्त कारण हो तो उसे निवारक निरोध कहते हैं। दूसरे शब्दों में, "बिना अपराध सिद्ध किये, बिना कोई आरोप लगाये जब किसी व्यक्ति को "शंका" या "सम्भावना" या "भूत के कार्यों" के आधार पर हिरासत में रखा जाता है तो उसे निवारक निरोध कहते हैं। निवारक निरोध का उद्देश्य दण्डात्मक निरोध की भाँति किसी व्यक्ति को उसके अपराध के लिए दण्डित करना नहीं बल्कि उसे अपराध करने से रोकना है और किसी अमुक कार्य को करने या किसी उद्देश्य को प्राप्त करने से रोकना है।

संविधान संसद को निवारक निरोध अधिनियम बनाने का अधिकार प्रदान करता है। संसद ने 1950 में निवारक निरोध कानून का निर्माण तीन वर्ष के लिए किया था परन्तु इसकी अवधि निरन्तर बढ़ाई जाती रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस निवारक निरोध अधिनियम की व्यवस्था अस्थायी रूप से की गई थी वह स्थायी रूप धारण कर चुकी है। 1971 में निर्मित आंतरिक सुरक्षा अधिनियम को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु निवारक निरोध व्यवस्था बनी हुई है। 1980 का राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (रासुका) उसका ही एक रूप है।

निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को निम्नलिखित सुविधायें [illegible] उपलब्ध हैं—

(i) अमुक व्यक्ति को बिना अभियोग लगाये अधिक से अधिक तीन महीने तक हिरासत में रखा जा सकता है।

(ii) सलाहकार मण्डल के परामर्श पर ही निवारक निरोध की अवधि को बढ़ाया जा [illegible]

5

[illegible]

[illegible]

(7)

[illegible] देखे जा सकते हैं। तीसरे, अनुच्छेद 29 में संस्कृति शब्द को परिभाषित नहीं किया गया और यदि संस्कृति शब्द का अर्थ [illegible], धार्मिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित [illegible] सिद्ध हो सकती हैं।

7. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)- नागरिकों के मूल अधिकारों को वास्तविक बनाने के लिए संविधान अनुच्छेद 32 से अनुच्छेद 35 में संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था करता है। [illegible] कार्यपालिका आदेश या कार्य या व्यवस्थापिका के कानून नागरिक अधिकारों पर आक्रमण करते हैं या उनको उल्लंघन करते हैं तो असन्तुष्ट पक्ष न्यायालय की शरण ले सकता है। अनुच्छेद 32 (2) उच्चतम न्यायालय को यह उत्तरदायित्व सौंपता है कि वह नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करने के लिए उनके संरक्षक और गारण्टीकर्ता के रूप में कार्य करे तथा आवश्यकता पड़ने पर बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण आदि लेखों (रिट) को जारी करे। इन लेखों का एकमात्र उद्देश्य नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करना, असन्तुष्ट पक्ष को शीघ्र न्याय दिलाना और उसे [illegible] प्रदान करना है। संविधान नागरिक अधिकारों को "पवित्र इच्छायें" मात्र नहीं बनाता, बल्कि उन्हें क्रियान्वित करने की ठोस व्यवस्था भी करता है।

व्यक्ति के [illegible] और उसकी सुरक्षा की दृष्टि से संवैधानिक उपचारों का अधिकार सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में संविधान "शून्य" हो जाता और अधिकार निरर्थक बन जाते। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे "संविधान की आत्मा और हृदय" कहा है। यह अधिकारों के शीर्ष पर है। यह उस [illegible] है जो नागरिकों के मूल अधिकारों को कार्यपालिका निरंकुशता और व्यवस्थापिका के अत्याचारों से रक्षा करता है।

संवैधानिक उपचारों के अधिकार को राष्ट्रपति आपातकाल में स्थगित कर सकता है, [illegible] और दैनिक [illegible] के अधिकार को निलम्बित नहीं कर सकता।

सम्पत्ति का अधिकार : मूल अधिकार से कानूनी अधिकार तक

(Right to Property : From Fundamental Right to Legal Right)

भारतीय संविधान निर्माता बीसवीं शताब्दी के [illegible] और समाजसेवी उन्न के विचार से प्रभावित थे। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त करना नहीं चाहते थे परन्तु वे इसे [illegible] भी छोड़ना नहीं चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने मूल संविधान के भाग तीन के दो अनुच्छेदों में सम्पत्ति के अधिकार का उल्लेख किया। अनुच्छेद 19 (1)(f) में नागरिकों को "सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार" दिया गया और अनुच्छेद 31 (1) में यह व्यवस्था की गयी कि "किसी व्यक्ति को कानून के प्राधिकार के बिना उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" अनुच्छेद 31 (2) में यह व्यवस्था की गयी कि सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अधिगृहीत की गयी सम्पत्ति के लिए मुआवजा दिया जायेगा। इस तरह भारतीय संविधान निर्माताओं ने नागरिकों को सम्पत्ति का अधिकार तो दिया परन्तु उसे सामाजिक नियन्त्रण के अधीन रखा।

भारतीय संवैधानिक इतिहास में सम्पत्ति का अधिकार बड़े विवाद का विषय रहा है, [illegible] मुआवजे का प्रश्न, न्यायालय और संसद के बीच संघर्ष का कारण रहा है। मुआवजे

[illegible] "[illegible] समाज" [illegible] के लिए [illegible] रहा है। यही कारण है कि [illegible] सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को रोकने [illegible] स्थापित करने वाली नीतियों के विरुद्ध [illegible] किये गए हैं। उदाहरणार्थ: जब न्यायालय ने [illegible] जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी भूमि सुधार अधिनियमों को [illegible] संविधान में प्रथम संशोधन किया गया। इसके [illegible] अनुच्छेद 31 A और 31 B के दो उपबन्धों [illegible] दिया। इसी प्रकार संविधान में चौथे, सत्रहवें, चौबीसवें, [illegible] पारित किया गया। 1971 के 25वें संशोधन अधिनियम ने [illegible] शब्द को ही निकाल दिया और उसके स्थान पर [illegible] व्यवस्था भी कर दी कि अधिगृहीत की गयी सम्पत्ति [illegible] अनुच्छेद 31 में धारा 31(c) जोड़कर अनुच्छेद 39 (b) और 39(c) [illegible] को मूल अधिकारों से प्राथमिकता दे दी। न्यायालय ने केशवानन्द [illegible] मामले में 25वें संशोधन की उस व्यवस्था को वैध करार दिया [illegible] 39(c) में वर्णित नीति निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों [illegible] उस व्यवस्था को अवैध घोषित कर दिया जिसमें न्यायालय के [illegible] था। न्यायालय ने यह अवलोकित किया कि संसद संविधान [illegible] सकती। 1976 के 42वें संविधान संशोधन ने जब सभी नीति [illegible] प्राथमिकता प्रदान कर दी तो न्यायालय ने 1980 के मिनर्वा मिल्स [illegible] इसे अवैध घोषित कर रद्द कर दिया।

44वें संविधान संशोधन के बाद सम्पत्ति का अधिकार [illegible] विधेयक ने सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित [illegible]

(i) इसने व्यक्तिगत सम्पत्ति सम्बन्धी अनुच्छेद 19(1)(f) और [illegible] निरस्त कर दिया है अर्थात् व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार [illegible] निकाल दिया गया है।

(ii) इसने भाग XII में अध्याय 4 जोड़कर अनुच्छेद 300A [illegible] कि "किसी व्यक्ति को कानून के प्राधिकार के बिना उसकी सम्पत्ति [illegible]

44वें संशोधन की उक्त व्यवस्थाओं ने सम्पत्ति के सम्बन्ध में [illegible] को निरपेक्ष बना दिया है। अब सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अधिग्रहण [illegible] के लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता नहीं है। [illegible] अधिकार ही पर्याप्त है। अब नागरिकों को व्यक्तिगत सम्पत्ति का [illegible] नहीं अर्थात् नागरिक अब कानून द्वारा अधिगृहीत की गयी सम्पत्ति के लिए [illegible] उपचार की माँग नहीं कर सकते [illegible]

[illegible] के लिए अधिगृहीत किया जा रहा है अथवा इसके लिए कोई मुआवजा दिया भी [illegible] या नहीं।

[illegible] का यह कदापि अर्थ नहीं कि नागरिकों को सम्पत्ति का कोई अधिकार ही [illegible] अधिकार प्राप्त है। नागरिकों को सम्पत्ति को अर्जित करने, रखने, बेचने, [illegible] पर दे देने, आदान-प्रदान, उसे उपहार में देने, उसके सम्बन्ध में इच्छा-पत्र [illegible] करने तथा उसके उत्तराधिकार को निश्चित करने का अधिकार है। [illegible] 300 A नागरिकों की सम्पत्ति को कार्यपालिका निरंकुशता से संरक्षण प्रदान करता है। [illegible] द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं कर सकती। इसके लिए [illegible] के कानून के प्राधिकार की आवश्यकता होती है। नागरिक अनुच्छेद 226 के [illegible] में याचिका भी दायर कर सकते हैं। सम्पत्ति का अधिकार आज भी [illegible] अधिकार है और कानून के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसकी [illegible] नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 300A की पदावली ठीक वही है जो [illegible] अनुच्छेद 31 (1) की थी। "यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति को अधिगृहीत करने वाला [illegible] मुआवजे में अयुक्तियुक्त वर्गीकरण करता है तो न्यायालय उसे अनुच्छेद 14 [illegible] घोषित कर सकती है।

[illegible] जैसे संविधानविदों का मत है कि 44वें संशोधन के बाद सम्पत्ति का [illegible] हो गया है। उनका मत है कि संसद और विधान मण्डल अब समवर्ती सूची [illegible] 42 अर्थात् "सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण" के अधीन ही सम्पत्ति का अधिग्रहण [illegible] है। न्यायालयों ने इस प्रविष्टि की यह व्याख्या की है कि सम्पत्ति को "सार्वजनिक [illegible] के लिए और "उचित मुआवजा" देकर ही अधिगृहीत किया जा सकता है। सारांश में, [illegible] सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार नहीं रहकर एक कानूनी अधिकार हो गया है।

मूल अधिकारों की आलोचना
([illegible] of Fundamental Rights)

[illegible] भाग तीन, जिसमें मूल अधिकारों का वर्णन किया गया है, नागरिक स्वतन्त्रताओं [illegible] है। यह भारतीय लोकतन्त्र और उसकी उदार एवं स्वतन्त्र संस्थाओं के अस्तित्व [illegible] इसमें वर्णित स्वतन्त्रताओं को निकाल दिया जाये या अमर्यादित ढंग से इन्हें [illegible] दिया जाये तो संविधान के लोकतान्त्रिक होने में ही सन्देह हो जायेगा।

[illegible] संविधान की विशेषता यह है कि जिन धाराओं में वह नागरिकों के मूल अधिकारों [illegible] उन्हीं में वह अपवादों, विशेष व्यवस्थाओं और शर्तों की व्यवस्था भी करता [illegible] के साथ प्रतिबन्धों को भी संवैधानिक मान्यता देता है। इन अपवादों, [illegible] और प्रतिबन्धों के कारण ही नागरिकों के मूल अधिकार निर्बाध, [illegible] नहीं। राष्ट्र की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था एवं हित, विदेशों से [illegible] जन-जातियों के [illegible]

नाम पर कभी भी और किसी भी सीमा तक प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। भारतीय नागरिकों के मूल अधिकार "निरपेक्ष नहीं", अथवा "उनमें सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर पाया जाता है", अथवा "उन्हें एक हाथ से देकर दूसरे हाथ से छीन लिया गया है", की युक्ति का प्रयोग [illegible] निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. **प्रतिबन्धों का व्यापक क्षेत्र**-भारत में प्रतिबन्धों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि नागरिकों के मूल अधिकार व्यावहारिक होने के स्थान पर सैद्धान्तिक अधिक हैं। [illegible] के अनुसार, "संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों और उनकी सीमित व्यावहारिकता में [illegible] अन्तर है।" आलोचकों का कहना है कि भाग III का शीर्षक "मूल अधिकार" होने के स्थान पर "मूल अधिकारों पर मर्यादायें" या "मूल अधिकार एवं उन पर मर्यादायें" होना चाहिए।

प्रतिबन्धों की व्यवस्था ने मूल अधिकारों के महत्व को कम कर दिया है। उनकी [illegible] उपयोगिता नष्ट हो गयी है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि राज्य इन्हें शान्तिकाल में भी स्थगित कर सकता है। राष्ट्रपति अध्यादेश द्वारा इन्हें स्थगित कर सकता है और प्राण तथा दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार को छोड़कर नागरिकों के अन्य अधिकारों को न्यायालय के संरक्षण से वंचित रख सकता है। जहाँ ब्रिटेन और अमरीका में नागरिकों के मूल अधिकारों पर [illegible] आपातकाल में ही प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं वहाँ भारत में इन्हें शान्तिकाल में भी कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की दया पर निर्भर कर दिया गया है। जहाँ अमरीका में आपातकाल में भी नागरिकों को न्यायालयों के संरक्षण से वंचित नहीं किया जाता वहाँ भारत में शान्तिकाल में नागरिकों को न्यायालयों के संरक्षण से वंचित किया जा सकता है। इस तरह भारतीय नागरिकों की स्वतन्त्रता का क्षेत्र कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की मानसिक दशा पर निर्भर करता है।

2. **कानूनी (संसदीय) अत्याचार से सुरक्षा का अभाव**-मूल अधिकारों का सही अर्थ यह होता है कि वे कार्यपालिका की निरंकुशता और व्यवस्थापिका के अत्याचार, दोनों से सुरक्षित रहें। परन्तु भारतीय संविधान उन्हें कार्यपालिका निरंकुशता से तो सुरक्षा प्रदान करता है, परन्तु संसदात्मक अत्याचार से कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करता है। संसद साधारण विधेयक द्वारा नागरिक स्वतन्त्रताओं को कम या रद्द कर सकती है। भारत में न्यायपालिका की शक्ति "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" से निर्धारित होती है अमरीका की भाँति "कानून की उचित प्रक्रिया" से नहीं। इसका अर्थ यह है कि संसद अथवा राज्य विधान सभा की अधिकार शक्ति के अन्तर्गत बनाया गया कानून वैध है चाहे वह कितना ही अन्यायिक, अनैतिक, कठोर, दुराचारी एवं अत्याचारी क्यों न हो। न्यायालय किसी कानून को तभी अवैध घोषित कर सकती है यदि वह संविधान की किसी धारा की उपेक्षा करता है या व्यवस्थापिका की अधिकार शक्ति से बाहर है। [illegible] यह है कि व्यवस्थापिका की इच्छा बहुमत की इच्छा होती है जो अत्याचारी हो सकती है।

3. संसद का प्रजातान्त्रिक के स्थान पर [illegible] दृष्टिकोण-भारतीय संविधान [illegible] अधिकारों एवं शक्तियों पर सीमाओं तथा प्रतिबन्धों [illegible] इतिहास इस बात का साक्षी है कि [illegible] की आवश्यकता को अनुभव नहीं [illegible] दृष्टिकोण [illegible] है, प्रजातान्त्रिक नहीं [illegible] करता है कि सामाजिक दृष्टि से [illegible] प्रजातान्त्रिक [illegible] के लिए अधिकारों का अतिक्रमण न हो [illegible]

(9)

[illegible] के निर्माण की अनिश्चित या असमर्थित [illegible] होने के लिए उत्तरदायी हैं।

4. भारतीय नागरिकों पर अविश्वास- संविधान में निवारक एवं व्यापक प्रतिबन्धों की व्यवस्था इस बात का प्रतीक है कि संविधान निर्माता भारतीय नागरिकों पर विश्वास नहीं करते थे। [illegible] मूल अधिकारों का निर्माण पुलिस [illegible] दृष्टिकोण से [illegible] अनुच्छेद 22 में निवारक निरोध की व्यवस्था, आपातकाल तथा शान्तिकाल में मूल अधिकारों के स्थगन की व्यवस्था तथा न्यायालयों के संरक्षण से वंचित रखने की व्यवस्था निश्चित ही अविश्वास के द्योतक हैं। ये व्यवस्थाएँ निरंकुशता के प्रतीक हैं, नागरिक स्वतन्त्रताओं के प्रतीक नहीं। संविधान सभा में [illegible] कामथ ने कहा था कि निरोध शक्ति की परिकल्पना में व्यवस्थाएँ करती हैं वे "[illegible] और [illegible] की शक्ति" की द्योतक हैं स्वतन्त्र देश की स्वाभाविक शक्ति की नहीं। वे "तानाशाही" और पुलिस राज्य की स्थापना में सहायक हैं, लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना में नहीं। इन्हें लोकतन्त्र विरोधी, न्याय की भावना के विरोधी तथा औचित्य विरोधी कहा गया है। बिना अपराध के और बिना किसी कानूनी आधार के केवल शंका और सम्भावना के आधार पर व्यक्ति को कार्यपालिका की इच्छा के दया के पात्र बना देना सभ्य समाजों का चिन्ह नहीं। आलोचकों ने इन्हें लोकतन्त्र की पुस्तक में "काले दाग" और "काले धब्बे" की संज्ञा दी है। प्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ एम. वी. पायली इन्हें लोकतन्त्र के नाम पर "कलंक" कहता है। [illegible] में, अंग्रेजों ने जिन गम्भीर उपायों की व्यवस्था राष्ट्रीय आन्दोलन के सेनानियों को कुचलने के लिए की थी वहाँ भारतीय संविधान निर्माताओं ने इनकी व्यवस्था नागरिक अधिकारों को कुचलने या उनका दमन करने के लिए की है।

5. संविधान की निरंकुश व्यवस्थायें- संवैधानिक प्रतिबन्धों का प्रयोग व्यवहार में जिस ढंग से किया गया है, वह मूल अधिकारों के सिद्धान्त और व्यवहार के अन्तर को स्पष्ट करता है। भारत सुरक्षा अधिनियम, आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम, निवारक निरोध अधिनियम और राष्ट्रीय सुरक्षा कानून की व्यवस्था देशद्रोहियों और समाज विरोधी तत्वों के लिए की गई थी, राजनीतिक विरोधियों का दमन करने के लिए नहीं। डी. आई. आर., मीसा, पी.डी.ए., एन.एस.ए., ([illegible]) का प्रयोग सरकारी कर्मचारियों की हड़तालों, अध्यापकों, विद्यार्थियों और व्यापारियों के विरुद्ध किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सरकार सामान्य विधि के अनुसार प्रशासन का संचालन नहीं कर सकती और शान्तिकाल में आपातकालीन व्यवस्थाओं के आधार पर शासन का संचालन करना चाहती है।

6. भेदमूलक संरक्षण- भारतीय संविधान में "भेद-मूलक संरक्षण" की व्यवस्था भी समानता की परिचायक नहीं। सामाजिक समानता के नाम पर जाति के आधार पर विशेष व्यवस्थाएँ करने का कोई औचित्य नहीं, विशेषकर उस परिस्थिति में जब इनका प्रयोग वोट बैंक

[illegible] भुगों से चलती आयी है, भारत में यह अभी स्थापित ही है।

7. सम्पत्ति के मूल अधिकार की निरर्थकता- [illegible] 19 को संशोधित कर तथा अनुच्छेद 31 को [illegible] मूल अधिकारों के भाग III से निकाल दिया है। अब सम्पत्ति [illegible] है एक सांविधानिक अधिकार नहीं। यह सत्य है कि [illegible] और उन पर नियन्त्रण की आवश्यकता है, परन्तु [illegible] अध्याय से निकाल कर यह भुला दिया गया है कि [illegible] अधिकार के रूप में सम्पत्ति की रक्षा की आवश्यकता होती है।

8. असहाय सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ [illegible] विषमताओं और बेरोजगारी के वातावरण में शोषण के विरुद्ध [illegible] मजाक है। बाल-श्रम एवं महिला श्रम सर्वत्र विद्यमान है। [illegible] व्यक्तियों का शोषण विद्यमान है। इसी प्रकार अनिवार्य और [illegible] करना कोरा आदर्श है। 54 वर्षों की स्वतन्त्रता के बाद [illegible] "जेब" पर निर्भर करती है मानवीय या नागरिक [illegible] संविधान की एक महान् एवं अद्वितीय विशेषता है परन्तु [illegible] इस कानून का दृढ़ता से पालन नहीं किया गया।

9. अस्पष्ट शब्दावली- मूल अधिकारों के [illegible] गया है जिनकी स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गयी। उदाहरणार्थ [illegible] "मानव का दुर्व्यापार" आदि शब्दों को स्पष्ट [illegible] गया जिनसे अनिश्चितताएँ और अस्पष्टतायें पैदा होती हैं।

10. सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा का अभाव- [illegible] मात्र हैं वास्तविकता नहीं। आर्थिक और सामाजिक [illegible] केवल धोखा है, अवास्तविकता है। [illegible] असहाय अवस्था में आर्थिक सुरक्षा का आश्वासन नहीं [illegible] राजनीतिक स्वतन्त्रतायें सम्पन्न वर्गों के हाथों की कठपुतली [illegible]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मूल अधिकारों [illegible] आरोपित किये गये हैं।

मूल अधिकारों का महत्त्व
(Importance of Fundamental Rights)

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि नागरिकों के मूल अधिकार जिस हाथ से दिए गए, उसी हाथ से वापस ले लिये गए हैं। मूल अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। कोई भी मौलिक अधिकार निरपेक्ष (सार्वभौमिक) नहीं है। इस पर भी मूल अधिकारों को व्यर्थ या अव्यावहारिक कहना गलत है क्योंकि सभी अधिकार न्यायालय में वाद-योग्य हैं। न्यायालय उनकी प्रहरी की भाँति इनकी रक्षा करता है और यदि कोई कानून संविधान की धाराओं के विपरीत है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर रद्द कर सकता है। भारतीय न्यायालय की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता असंदिग्ध है। उदाहरणतः जहाँ 1974 के केशवानन्द भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के मूल ढाँचे की बात कहकर संसद की मर्यादित शक्तियों की ओर संकेत किया, वहाँ 1980 के मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के विवाद में 42वें संशोधन द्वारा जोड़ी गई धारा 368 (4) और (5) और 31 (c) को अवैध घोषित करके मूल ढाँचे को परिभाषित करने का प्रयास किया। मिनर्वा मिल विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की असीमित शक्तियों के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि संसद संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत ही कार्य कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के जिन वस्तुओं अथवा भागों को मूल ढाँचे के अंग घोषित किया है वे हैं प्रजातन्त्र, कानून का शासन, मूल अधिकार, मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों में सन्तुलन, न्यायिक पुनरावलोकन तथा धर्मनिरपेक्षता।